हिंदी फिल्मों का स्त्रीपाठ: भाषिक आयाम

डॉ. पद्मप्रिया

हिंदी विभाग
पांडिचेरी विश्वविद्यालय
पुडुचेर्री -605014
padmapriya.sriraka@gmail.com

मानव समाज में भाषा का विशेष महत्व है। एक शताब्दी पहले तक भाषा बोलने, सुनने, पढ़ने, व लिखने तक सीमित थी परन्तु दृश्य-माध्यमों के आगमन के बाद यह देखने तक विस्तार आ चुकी है। इस प्रकार भाषा ने न केवल एक तकनीकी नवीन आयाम प्राप्त किया अपितु नवीन अर्थों की ओर भी उन्मुख हुई है। न केवल तकनीकी स्तर पर, बल्कि कथ्य, कथानक और दृष्टि से सम्बंधित अनेक अनछुए प्रसंगों को भी लेकर अनेक स्तरों पर उभर रही है। कथ्य और कथानक के माध्यम से सिनेमा ने अनेक सामजिक मुद्दों को प्रत्यक्ष एवं प्रछन्न रूप से प्रस्तुत किया है। उदहारण स्वरुप 'अछूत कन्या बंदिनी', 'दो आँखें बारह हाथ' से लेकर 'चांदनी बार', 'गुरु', 'पीपली लाइव' तक अनेक विषयों पर फ़िल्में बनी हैं। सामान्य मसाला फ़िल्में मात्र मनोरंजन ही नहीं, बल्कि समाज की अतिशयोक्ति पूर्ण चित्रात्मक अभिव्यक्ति भी है।

इस सन्दर्भ में फिल्मों की भाषा के आयाम केवल वाचिक अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं रह जाती। सिनेमा की भाषा का नया व्याकरण निर्मित हो रहा है और यह समकालीन मनुष्य जीवन के सापेक्ष ही है। भारत की पहली मूक फिल्म से लेकर आज तक, फिल्मों ने मानव जीवन में एक अनिवार्यता का स्थान ले लिया है।

आधुनिक काल में हर प्रकार के विचार को चुनौती दी गयी है। चिंतन-मनन से लेकर सामजिक-पारम्परिक जीवन शैलियों में अनेक प्रकार की नूतन उद्भावनाओं का जन्म हुआ है। धर्म, संस्कृति, राजनीति, मनोविज्ञान सम्बंधित रूढ़ परिपाटियों के सम्मुख प्रश्न चिन्ह लगाए गए हैं। लिखित साहित्य में ही नहीं, बल्कि दृश्य-माध्यमों का सृजन ही नहीं, बल्कि चिंतन, मनन आलोचना द्वारा दमनकारी संरचनाओं को पहचानने की अकुलाहट ही आधुनिक काल की विशेषता रही है। दमनकारी तत्वों -संस्थाओं की पहचान तो हो रही है साथ ही भाषा की भूमिका पर भी विचार किया जा रहा है। हिंसक एजेंसियों की भाषा भी हिंसक तत्वों की वाहक होती है। इस प्रकार भाषा के अर्थ- प्रतिपाद्यों के अध्ययन द्वारा सामाजिक व्यवहार को समझने के नए परिप्रेक्ष्य उभरकर आते हैं। स्त्रीवादियों ने भाषा के पुनर्पाठ द्वारा स्त्री परिप्रेक्ष्य की नूतन प्रणाली का नया पन्ना

खोला है। इस स्त्रीपाठ द्वारा भाषा में निहित उन संरचनाओं को समझने की अन्नत संभावनाएं उत्पन्न हो जाती हैं। स्त्री-जीवन को प्रत्यक्ष एवं प्रच्छन्न रूप से नियंत्रित एवं नियमित करने वाले तत्वों एवं इन तत्वों को विच्छिन्न करने के नए उपकरणों को बड़ी सचेतन पद्धति से खोजा तथा स्थापित किया जा रहा है। 'वस्तुतः नारी-विमर्श को पारम्परिक पाठ-पद्धति के स्थान पर नयी पथ-पद्धति तथा पथ-पद्धति की राजनीति में हस्तक्षेप के द्वारा उन सामजिक संरचनाओं को पहचानने तथा बदलने का उपक्रम किया है जो स्त्री के अस्तित्व को कुंठित तथा दमित करती है।'

ज्ञान के प्रत्यक्ष क्षेत्र को ही नहीं, बल्कि निजी एवं सार्वजनिक स्पेस को स्त्री के परिप्रेक्ष्य से परखा जा रहा है तथा स्त्री विमर्श की सैद्धांतिकी गढ़ी जा रही है। साहित्य के सन्दर्भ में स्त्री विमर्शकों ने पाठ और पाठ की राजनीति पर दृष्टि केंद्रित की है और उनके अनुसार 'जिन कृतियों को पहले एक विशेष परिप्रेक्ष्य में और एक विशेष ढंग से पढ़ा गया है, यदि उन्हीं कृतियों को किसी अन्य परिप्रेक्ष्य में किसी अन्य ढंग से पढ़ा जाए तो पहले से भिन्न निष्कर्ष निकालेंगे।' इस प्रकार हिंदी फिल्मों का भी जब स्त्री परिप्रेक्ष्य से अध्ययन होता है तो अनेक नए आयाम सामने आते हैं। अभी हिंदी सिनेमा विमर्श ने बहुत गंभीर रूप से अकादमिक चर्चा में स्थान नहीं प्राप्त किया है। सिनेमा में स्त्री पर दृष्टि पुष्ट हो रही है परन्तु अभी अनेक संभावनाएँ बची हुई हैं।

भाषा विज्ञान ने भाषिक इकाईयों पर गहन-गंभीर अध्ययन प्रस्तुत किये हैं। संस्कृत वैयाकरणों से लेकर सस्यूर, देरिदा, हैबरमॉस तक सभी ने भाषा की संरचनाओं, विखंडन पर अपने - अपने मत प्रकट किये है। शब्द एवं अर्थ पर अनेक वाद- विवाद हुई हैं - बौद्ध दर्शन में भी माना जाता है कि शब्द अर्थ का स्पर्श तक नहीं करते - ' ननु नार्थशब्दः स्पृश्यांतिः'। यदि अर्थ का अनर्थ हो जाए तो गलत अर्थ का जन्म होता है। फिल्मों में संवाद तथा गीतों में शब्द का प्रयोग होता है। नाट्य संवाद और सिनेमाई संवाद में दृश्य- भाषा का संयुक्त प्रयोग होता है और एक विशिष्ट सम्प्रेक्षण भाषा का निर्माण होता है। सिनेमा को सातवीं- कला माना गया है। इसमें चित्रकला, वास्तुकला, नृत्य, रंगमंच तथा संगीत एवं साहित्य का सम्मिलित प्रयोग होता है। इसमें तकनीकी तथा गैर तकनीकी तत्वों का योग होता हैं। शब्द मात्र अर्थ ही नहीं, बल्कि अनेक सन्दर्भों, इतिहास, पुराण, मिथकों तथा परंपरा को अपने भीतर समेटकर चलती है।

आधुनिक काल में चिंतकों, साहित्यकारों आदि ने जीवन की विडम्बनाओं और विरोधाभासों को अत्यंत तीव्रता से पहचाना परन्तु स्त्रीपाठ की दृष्टि से इन सबकी कृतियाँ पुरुष अनुभव ही रहे हैं। अनेक फिल्म निर्देशिकाएँ भी इस बीच अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करा चुकी हैं। जैसे गुरिंदर चड्ढा, मीरा नायर, अपर्णा सेन, हेमामालिनी, सुहासिनी आदि किन्तु अब भी फिल्म उद्योग मूलतः पुरुषों द्वारा ही नियंत्रण में है। यह मात्र दोषारोपण नहीं अपितु उन संरचनाओं को समझने का उत्कट प्रभाव डालती है। समकालीन सन्दर्भ में मार्क्सवादी, अस्तित्ववादी जैसे विचारधाराएँ चरमरा चुकी हैं, आदर्शवाद और आंदोलन के गढ़ बिखर चुके हैं, वैश्वीकरण और बाजारवाद ने दुश्मनी की निश्चित छवि को धुधला कर दिया है ऐसे वातावरण में न तो शब्दों की कोई निश्चित व्याख्या हो सकती है और न ही किसी प्रकार की मान्यता या धारणा को स्थापित किया जा

सकता है। यदि साहित्य में कृति ही 'पाठ' अथवा 'टेक्स्ट' है तो फिल्म अध्ययन में एक फिल्म ही अपने आप में 'टेक्स्ट' हो जाता है।

फिल्म में संवाद और गीत के शब्द पाठ का मूलाधार बनता है। स्क्रिप्ट लेखन, इस स्तर पर महत्वपूर्ण हो जाता है। संवाद में प्रयुक्त भाषा द्वारा विचारों, संस्कारों एवं अनुभवों के प्रभावों को विशेषित किया जा सकता है उदहारण के लिए 1951 में बनी 'आवारा' के संवाद देखिये-

(प्रसंग- राज अपनी परिस्थितियों से परेशान है रात का शांत समय। मद्धिम रोशनी में, एक लैंप पोस्ट के नीचे, एक कुत्ते से बातचीत. वातावरण में उदासी. करुणा)

राजा : आओ दोस्त, तुम्हीं से बात करे (धीमा स्वर) कितनी अजीब बात है, तू आवारा, मैं भी आवारा, तू भी बेनाम, मैं भी बेनाम, तू भी बेघर, मेरा भी कोई घर नहीं. मेरी तरह तू भी प्यार का भूखा है फर्क इतना है कि तू जानवर है (स्वर कुछ तेज़) मैं इंसान हूँ ..... इंसान हूँ (हँसी) मेरे पास कुछ नहीं तुझे देने के लिए, सिर्फ प्यार दे सकता हूँ (कुत्ते को पास लाकर चूमता है)

यहाँ 'इंसान' शब्द में जातिवाचक संज्ञा ही प्रबल है। ऐसे ही एक गीत का नमूना देखें 'साथी हाथ बढ़ाना, एक अकेला थक जाए तो मिलकर हाथ बढ़ाना'। यहाँ 'साथी' के साथ तो स्त्री जुड़ सकती है परन्तु केंद्र में 'अकेला' शब्द ही अधिक शक्तिशाली रूप में मुखर हो उठता है जो पुरुष वाचक है। इस प्रकार समस्त भाषा प्रकरणों में स्त्री तथा पुल्लिंग के द्वंद्व उभरते हैं। हिंदी भाषा में शब्दों के इस विभाजन में स्त्री तथा पुरुष छवियाँ अचेतन रूप से अंकित हो जाती हैं। इसी प्रकार निम्नलिखित पंक्तियों में पितृसत्तात्मक समाज किस प्रकार उभरकर आता है ज़रा देखें -

जज रघुनाथ : नाम ?
(अंतराल)
राज : राज.....
रघु : बस राज.....हुऊँ ?
राज : जी .... हुऊँ .
रघु : तुम्हारे बाप का नाम
राजा : मुझे नहीं मालून।
रघु : हुऊँ.....? समझा, क्या काम करते हो?
राज : आज कल बेकार हूँ , लाखों नौजवानों की तरह .
रघु : और कोई आमदनी, जायदाद
राज : कुछ नहीं

यहाँ व्यक्ति की पहचान पिता के नाम से है। बेकारी सिर्फ नौजवानों की है। समस्त प्रसंगों में पुरुष एवं पुरुषत्व ही केंद्र में है।

फिल्मों में संवाद के साथ-साथ प्रतीकात्मक चित्र, संगीत तथा दृश्यों का भी अंकन होता है। इसलिए जहाँ शब्दों में अनेकार्थ उत्पन्न हो सकते हैं वहीं उपरोक्त सभी तत्वों के साथ-साथ अभिनय अथवा शारीरिक क्रियाओं द्वारा भी भावपुष्टि होती है। जहाँ शब्द भाव को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त नहीं कर सकते वहाँ हरकत कर सकती है। इसी को मोहन राकेश ने अपने नाटक 'आधे- अधूरे' में हरकत की भाषा कहा है। इसलिए स्त्रीपाठ केलिए फिल्मों में शब्दों से ज़्यादा हरकत अधिक अर्थपूर्ण है। जैसे हिंदी गानों में प्रेमिका, पत्नी, वेश्या आदि स्त्री छवियों को स्पष्ट देखा जा सकता है। रोमांटिक गीतों के बरक्स आइटम गीतों को इसी कोटि में रखा जा सकता है। हिंदी फिल्मों के कथानक तथा गानों में इन छवियों को पुष्ट करने वाले शब्दों के गहन अध्ययन की आवश्यकता है। जैसे 'माफिया' फिल्म में एक पुलिस अफसर दूसरे पुलिस अफसर से कहता है कि वह अपनी वर्दी से 'स्टार' को निकाल दे क्योंकि ये किसी तवायफ कि माँग में सिंदूर की तरह लगते है और उसे रखैल कहता है। यह भी कहता है जब रखैल बूढी हो जाती है तो उसे कहाँ मारकर निकाल दिया जाता है यह तो वह (दूसरा पुलिस) अफसर जानता ही होगा।

इस संवाद स्त्रीत्व सम्बन्धी अपमान जनक प्रयोग है जो समस्त समाज में प्रायः रोजमर्रा की भाषा में गहराई से स्थापित हो चुके हैं और स्त्री की विरोधपूर्ण आवाज़ को इसी प्रकार के अपशब्दों के टेल दबादिया जाता है। अपशब्द स्त्री तथा उसकी यौनिकता से जुड़े होते है। ऐसे शब्दों को प्रयोग इस बीच कई फिल्मों में देखे गए है जैसे डेली-बेली, जन्नत-2 , गैंग्स ऑफ़ वासेपुर आदि।

घर-परिवार को केंद्र में रखकर कुछ ऐसी फ़िल्में बनी हैं जो गहन विश्लेषण की माँग करती है। प्रवासी भारतीयों को लेकर दृष्टि में रखकर प्रदेश, 'कभी ख़ुशी कभी गम' जैसी अनेक फिल्मों ने 'परिवार' की संस्था तथा संस्कारों को लेकर प्रत्यक्ष व परोक्ष चित्रण किया गया है घर परिवार अक्षर मोहक रूप में चित्रित किया गया है परन्तु 'लाइफ इन मेट्रो' 'कभी अलविदा न कहना' जैसी फिल्मों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध को भी देखा गया है। साम्प्रदायिक धार या पितृदायक कुटुंब की संस्थागत व्यवस्था में सामान्यतः स्त्री और पुरुष या तो परिवार द्वारा तयशुदा शादी के माध्यम से पहुँच जाते है। नहीं तो प्रेम सम्बन्ध के माध्यम से। प्रेम सम्बन्ध भी विवाह पर्यन्त कुटुंब की सांप्रदायिक संस्था में जा मिलता है, इसलिए बताया जाता है कि वर्त्तमान समय में प्रेम का स्वरुप गुलामी का रहता है, नहींतो कपट सदाचार से नियंत्रित अभिनय होता है। नतीजतन ये दोनों पद्धतियाँ पारिवारिक संस्था या घर के वर्चस्ववादी स्वरुप पर कोई सवाल नहीं करती हैं। अतः घरेलु हिंसा या पुरुष वर्चस्व की चर्चा में इन दोनों में किसी एक का चयन करने से वर्चस्व या अधीशत्व की समस्याओं की कोई क्षतिपूर्ति नहीं होने वाली है।' *(विमर्श और विस्तार, प्रमिला के. पी., पृ. - 81)* हिंदी फिल्मों में प्रेम और दाम्पत्य के यही रूप होते हैं। समकालीन कुछ फिल्मों की हेरोइन पुरानी फिल्मों से भिन्न रूप में दर्शायी गयी हैं जैसे जब भी मेट, मेरे ब्रदर की दुल्हन, तनु वेड्स मनु परंतु फिर भी कोई बहुत क्रांतिकारी विकल्प अभी नहीं उभरा है। इसी प्रकार शब्द के धरातल पर पुनर्पाठ को एक 'शब्द' उदहारण स्वरुप देकर हो सकता है। 'हवा' स्त्रीलिंग शब्द है और इसका प्रयोग एक अलग अर्थ भी दे सकता है जैसे केदारनाथ अग्रवाल की प्रसिद्द कविता है-

' हवा हूँ हवा मैं
बसंती हवा हूँ। '

बचपन में इसे हवा की प्रकृति और प्रकृति की कविता के रूप में पढ़ा था परन्तु स्त्रीपाठ की दृष्टि से इसे समकालीन स्त्री की प्रकृति के रूप में देखा जा सकता है। कभी तेज बहना, कभी तूफानी तो कभी कभी बंद हो जाना कभी मंद बहना इस प्रकार अनंत संभावनाओं वाली आधी आबादी को समझकर पुनर्पाठ की ओर बढ़ा जा सकता है। फिल्म 'फिजा' में ऐसा ही एक गीत 'करिश्मा कपूर' पर फिल्माया गया है-

"तू हवा है, फिजा है, जमीं की नहीं तू घटा है तो
फिर क्यों बरसती नहीं
उड़ती रहती है तू पंछियों की तरह
आ मेरे आशियाने में आ तू हवा है.....
मैं हवा हूँ कहीं भी ठहरती नहीं
रुक भी जाऊं कहीं पर तो रहती नहीं
मैंने तिनके उठाये हुए हैं परों पर आशियाना नहीं हैं मेरा
घने एक पेड़ से मुझे झोंका कोई लेकर आया है
सूखे पत्ते की तरह हवा ने हर तरफ उड़ाया है...."

वस्तुतः केदार की कविता और इस गीत में बहुत साम्य हैं। वस्तुतः फिल्मों का स्त्रीपाठ हिंदी भाषा के अनछुए पहलुओं तथा समाज में उसके प्रभाव को ही नहीं बल्कि परस्पर अन्तः सम्बन्ध को उजागर करके स्त्री के सरोकारों को बेहतर दृष्टि दे सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. नागेंद्र, डॉ. हरदयाल, मयूर पेपर बुक्स, नोइडा
2. विमर्श और विस्तार - प्रमिला के. पि. बोधि पेपर बुक्स, जयपुर